Shikshan Sanshodhan : Journal of Arts, Humanities and Social Sciences ISSN: 2581-6241 Volume - 4, Issue - 10, Oct - 2021
Monthly, Peer-Reviewed, Refereed, Indexed Journal Impact Factor: 5.146
Received on : 15/09/2021 Accepted on : 10/10/2021 Publication Date: 31/10/2021

पंचायती राज व्यवस्था एवं महिलाऐं -एक विष्लेषणात्मक अध्ययन

नवल किशोर
शोध छात्र, लोक प्रषासन विभाग
राज ऋषि र्भतृहरि मत्स्य विष्वविधालय, अलवर, राजस्थान
ईमेल - nawalgurjar85@gmail.com

सारांश :- वस्तुतः भारतवर्ष गॉवों का देष है। वैदिक काल से ही गॉवों को महत्ता प्राप्त रही है। गॉवों को आत्मनिर्भर बनाने तथा स्थानीय प्रबन्ध उन्हें स्वयं करने की परम्परा यहाँ सदैव से विद्यमान रही है। यह परम्परा मुगल शासन तक अक्षुण्ण रही। अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना के साथ ग्राम-प्रणाली को विनष्ट करने का सुनियोजित प्रयास किया गया। स्वातन्त्रय आन्दोलन के दौरान ही यह अनुभव कर लिया गया था कि बिना ग्रामोद्धार के स्वतन्त्रता के वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसलिए पंचायती राज का मुद्दा हमारे स्वाधीनता संग्राम का अभिन्न अंग बन गया। गाँधी जी ने इस मुद्दे को राष्ट्रीय स्वरूप दिया और ग्राम-गणराज्य के अभ्युदय में ही वास्तविक स्वराज्य माना। पंचायती राज जैसी संस्थाएं ही राज्य और राष्ट्रीय स्तर के नेताओं का प्रषिक्षण स्थल है। अतएव कहा जा सकता है, कि स्वतंत्र राष्ट्र की शक्ति स्थानीय संस्थाओं में निहित होती है। संवैधानिक संषोधनों के द्वारा लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के परिदृष्य की तुलना संषोधन-पूर्व काल में प्रचलित परिदृष्य से की जानी चाहिए पूर्ववर्त्ती कालों में, राज्य पंचायत कानूनों के अनुसार, दो तीन-महिला सदस्य स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व प्रदान करती थीं। लेकिन उक्त संषोधनों से आरक्षण की व्यवस्था होने के साथ ही लगभग 10,00,000 महिलाएं स्थानीय निकायों में विभिन्न श्रेणियों में या तो सदस्यों के रूप में अथवा सभापति के रूप में निर्णय लेने वाले पदों तक पहुँच गई है। पंचायती राज व्यवस्था के समस्त परिदृष्य का अनुकूलन करने के उपरांत यह स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक संरचना, परम्पराओं एवं संस्कृति के कारण सम्भवतः महिला पंचायत प्रतिनिधि उत्साहित व इच्छासक्त होने के बावजूद ग्रामीण विकास की दिषा में प्रभावी योगदान नहीं कर पा रही है। स्थानीय राजनीतिक नेतृत्व एवं नौकरषाही भी यद्यपि इस तथ्य को पहचानती है तथापि वह कोई सक्रिय रचनात्मक पग उठाने के प्रति विभिन्न कारणों से या तो उत्साहित नहीं है अथवा हिचकती है अतः आवष्यकता यह है कि लोकनीति निर्माणकर्ता जो व्यवस्था की कुर्सी पर विराजमान है वे यथार्थ को समझे और षिक्षण प्रषिक्षण एवं जनजागरण के माध्यम से स्थानीय प्रषासन में महिलाओं को इतना सषक्त समर्थन प्रदान करें ताकि वे अपनी क्षमताओं का सही- सही उपयोग एवं प्रदर्षन कर सकें।

मुख्य बिंदु : पंचायती राज, महिला प्रतिनिधि, ग्रामीण नेतृत्व, ग्रामीण विकास ।

1. प्रस्तावना :

भारतीय लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था का मूल आधार पंचायत राज व्यवस्था रही है। सभ्य समाज की स्थापना के बाद से ही मनुष्य ने जब समूहों में रहना सीखा, पंचायत राज के आदर्ष एवं मूल सिद्धान्त उसकी चेतना में विकसित होते आए हैं। इस व्यवस्था को विभिन्न कालों में अलग-अलग नामों से पुकारा जाता रहा। कभी वे गणराज्य कहलाए कभी नगर शासन व्यवस्था और कभी किसी अन्य नाम से उनकी पहचान हुई, लेकिन उन सारी व्यवस्थाओं में एक-दूसरे के साथ रहने, मिल-जुल कर काम करने और अपनी तात्कालिक समस्याओं को अपने आप सुलझाने की प्रवृत्ति निरंतर विकसित होती रही। भारतवर्ष में गाँधी जी ने प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की एक समग्र अभिनव योजना आधुनिक समय में ग्राम-गणतन्त्र के रूप में प्रस्तुत की। गाँधी जी के अनुसार ग्राम-गणतन्त्र छोटे-छोटे सहकारी समाज होंगे जिनके कृत्यों का सम्पादन उनमें रहने वाले व्यक्तियों के सहयोग से होगा। इसमें सत्ता का फैलाव कर दिया जायेगा। यह फैलाव ग्राम-व्यवस्था, जिला-व्यवस्था, प्रान्त-व्यवस्था तथा राष्ट्र-व्यवस्था की ओर पिरामिडाकार न होकर लहरों की तरह चक्राकार एक के बाद एक की आकृति में होगा। इस समाज की बृहतर व्यवस्था अपनी ताकत का उपयोग भीतर वालों को कुचलने के लिए नहीं करेगा, बल्कि उन सबको ताकत देगा और उन सबसे ताकत पाएगा। इस सारी व्यवस्था का उद्देष्य मानवहित है और वसुधैव कुटुम्बकम् के आदर्ष से अभिप्रेत है। आगे चलकर गांधीजी के विचार को विनोबा भावे तथा जयप्रकाष नारायण ने विस्तार दिया। विनोबा भावे ने इसमें भू-दान, ग्राम-दान तथा जीवनदान जैसे सम्प्रत्ययों को जोड़कर नूतन आयाम की सृष्टि की।

वस्तुतः भारतवर्ष गॉवों का देष है। वैदिक काल से ही गॉवों को महत्ता प्राप्त रही है। गॉवों को आत्मनिर्भर बनाने तथा स्थानीय प्रबन्ध उन्हें स्वयं करने की परम्परा यहाँ सदैव से विद्यमान रही है। यह परम्परा मुगल शासन तक अक्षुण्ण रही। अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना के साथ ग्राम-प्रणाली को विनष्ट करने का सुनियोजित प्रयास किया गया। स्वातन्त्रय आन्दोलन के दौरान ही यह अनुभव कर लिया गया था कि बिना ग्रामोद्धार के स्वतन्त्रता के वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसलिए पंचायती राज का मुद्दा

हमारे स्वाधीनता संग्राम का अभिन्न अंग बन गया। गाँधी जी ने इस मुद्दे को राष्ट्रीय स्वरूप दिया और ग्राम-गणराज्य के अभ्युदय में ही वास्तविक स्वराज्य माना। संविधान निर्माण के समय पुनः यह मुद्दा उठा। परन्तु इसे महत्ता प्रदान नहीं की गई। डॉ. अम्बेडकर ग्राम-पंचायतों के प्रति नकारात्मक विचार रखते थे। उन्होंने इसका विरोध किया। संविधान के प्रारूप में इसे महत्व नहीं दिया गया। गाँधी जी की मृत्यु के बाद तो संविधान में पंचायती राज संस्थाओं को भारतीय प्रजातन्त्र का आधार-स्तम्भ बनाने की बात पृष्ठभूमि में चली गयी। राज्य के नीति-निर्देषक तत्वों के रूप में इन्हें जोड़ना इस बात का प्रमाण है। नीति निर्देषक सिद्धान्त शासनतन्त्रों के लिए बाध्यकारी नहीं होते। इससे इन संस्थाओं की स्थिति प्रायः सभी प्रान्तों में कमजोर रही। प्रथम पंचवर्षीय योजना के क्रियान्वयन के दौरान जब यह महसूस किया गया कि विकास में आम आदमी की सहभागिता आवष्यक है तब पं. जवाहर लाल नेहरू ने 1957 में बलवन्त राय मेहता समिति का गठन इस हेतु किया। समिति ने त्रि-स्तरीय व्यवस्था की अनुषंसा की - ग्राम स्तर पर पंचायत, विकास खंड स्तर पर पंचायत समिति तथा जिला स्तर पर जिला परिषद। समिति की संस्तुतियों के आधार पर 2 अक्टूबर, 1959 को सर्वप्रथम राजस्थान प्रान्त से पंचायती राज का शुभारम्भ हुआ। शीघ्र ही पूरे देष में राज्यों ने थोड़े-बहुत संरचनात्मक परिवर्तन के साथ इसे अपना लिया। 2 अक्टूबर से इसे प्रारम्भ करने का तात्पर्य इसे गांधी जी से जोड़ना था। नेहरू जी ने प्रत्येक ग्राम पंचायत के साथ एक स्कूल तथा एक सहकारी समिति की संकल्पना को भी जोड़ा। उन्होंने अपने शासनकाल में ग्रामोत्थान हेतु अनेक सामुदायिक कार्यक्रमों की शुरूआत भी की। नेहरू की मृत्यु के पश्चात इस व्यवस्था को लेकर जो उत्साह था वह मन्द पड़ गया और पंचायती राज के विकास की गति विकृत हो गई। सन् 1977 में जब जनता दल केन्द्र में सत्तारूढ़ हुआ तब अषोक मेहता समिति का गठन पंचायती राज संस्थाओं की समीक्षा हेतु किया गया। उसने 1978 में प्रस्तुत अपने प्रतिवेदन में कहा कि, ''पंचायती राज उतार-चढ़ाव की कहानी है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह तीन अवस्थाओं से गुजरा है। आरोहण की अवस्था (1959-64); निष्क्रियता की अवस्था और अवनति की अवस्था (1969-1977)। समिति ने पंचायती राज पर विषद् प्रतिवेदन प्रस्तुत किया और उसको जीवन्त रूप देने के लिए कई संस्तुतियाँ भी कीं। पर पूरे प्रतिवेदन में कहीं भी पंचायती राज को ग्राम-स्वराज्य और ग्राम-गणतन्त्र के परिप्रेक्ष्य में विकसित करने का उल्लेख नहीं था। राजीव गाँधी की सरकार ने 64 वें संविधान संषोधन अधिनियम (1989) के द्वारा इन कमियों को दूर करने का उपक्रम किया। पर वे सफल नहीं हो सके। लोकसभा में तो यह अधिनियम पारित हो गया पर राज्यसभा ने इसे पारित नहीं किया। आगे चलकर नरसिम्हा राव के काँग्रेसी सरकार द्वारा इसमें थोड़ा फेर-बदल करके 73 वां संविधान संषोधन अधिनियम लाया गया जिससे पंचायती राज व्यवस्था को सक्रिय किया जा सके। यह संषोधन अधिनियम भारी मतों से संसद द्वारा पास कर दिया गया, यह एक क्रान्तिकारी कदम माना गया। सभी राज्यों ने अधिनियम द्वारा निष्चित अवधि (24 अप्रैल, 1994) में अधिनियम के अनुरूप अपने-अपने राज्यों में पंचायती राज अधिनियमों को बना लिया। पंचायती राज सामुदायिक विकास कार्यक्रम से कहीं अधिक व्यवहारिक व ग्रामीण जनों की सक्रिय सहभागिता पर आधारित कार्यक्रम है, जो देष के बहुसंख्यक ग्रामीण जन-समुदाय को स्वयं अनुभव की गई आवष्यकताओं की पूर्ति हेतु आयोजना एवं उसकी क्रियान्विति के अवसर उपलब्ध कराता है। भारत जैसे विषाल विकासषील देष के त्वरित आर्थिक विकास के लिए बड़ी-बड़ी केंद्रीकृत परियोजनाएं ही पर्याप्त नहीं है। देष के औद्योगिक विकास में लघु परियोजनाओं एवं गृह उद्योग-धन्धों की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। गृह उद्योग धन्धों द्वारा देष के कोटि-कोटि जनों को राष्ट्र के विकास में हाथ बंटाने का समुचित अवसर प्राप्त होता है। पंचायती राज संस्थायें इन लघु उद्योगों को संगठित करने की यंत्र प्रणाली उपलब्ध कराती है।

अतः पंचायती राज संस्थाएं जैसी स्थानीय स्वषासन की इकाइयों की आवष्यकता प्रतिपादित करते हुए निस्संदेह रूप से कहा जा सकता है कि किसी भी राष्ट्र द्वारा स्वतंत्र सरकार की स्थापना सरलता से की जा सकती है, किन्तु बिना स्थानीय स्वषासी संस्थाओं की विधिवत स्थापना किए हुए, नागरिकों में स्वातंत्र चेतना जागृत नहीं की जा सकती है। पंचायती राज जैसी संस्थाएं ही राज्य और राष्ट्रीय स्तर के नेताओं का प्रषिक्षण स्थल है। अतएव कहा जा सकता है, कि स्वतंत्र राष्ट्र की शक्ति स्थानीय संस्थाओं में निहित होती है।

2. उद्देष्य -

- 73वें संविधान संषोधन के संदर्भ में महिलाओं को प्राप्त संवैधानिक अधिकारों की व्यवहारिक अनुपालना की वास्तविक स्थिति का विष्लेषणात्मक एवं तुल्नात्मक अध्ययन तथा चयनित महिला प्रतिनिधियों की व्यैक्तिक, सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि को समझना है।
- ग्रामीण नेतृत्व की गतिषीलता, आकांक्षाएं, संस्थापित मूल्य, महिलाओं की भागीदारी तथा प्राकार्यत्मक परिवर्तनों आदि पर उनके मूल्यों, विचारों आदि की जानकारी प्राप्त करना।

3. अध्ययन की परिकल्पना -

- पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं को चयनित करने से उनकी सामाजिक, आर्थिक एवं व्यैक्तिक स्थिति सुदृढ़ हुई है।
- पंचायती राज व्यवस्था समग्र ग्रामीण विकास के लिए आधारभूत भूमिका निभा रही है।

4. शोध प्रविधि -

शोध नियमों के अनुसार प्रस्तुत शोध सैद्धांतिक, विश्लेषणात्मक, तुलनात्मक एवं नवीन व्यवहारिक पद्धतियों को अपनाते हुये शोध लेख को मौलिकता प्रदान करने का प्रयास किया गया है। इस शोध कार्य हेतु आवश्यक सामग्री विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय

पुस्तकालयों इंटरनेट एवं शोध संस्थानों आदि में उपलब्ध साधनों के अलावा प्राचीन संदर्भ ग्रन्थों से एकत्र किया जाना अनुमन्य है। इन संदर्भ आधारित पुस्तकों के अलावा विभिन्न आयोगों के प्रकाशनों, आत्मलेखों, समाचार पत्र-पत्रिकाओं, राजनैतिक दलों के घोषणा पत्रों एवं राजनेताओं के भाषण इत्यादि से लेखन सामग्री संग्रहित कर विश्लेषणात्मक अध्ययन है।

4.1 पंचायती राज व्यवस्था एवं महिलाएं -

ऐतिहासिक रूप से पंचायतों में महिलाओं की भूमिका के विषय में कोई विषेष जानकारी नहीं है क्योंकि इनमें मुख्यतः पुरूषों का आधिपत्य था। 1952 के सामुदायिक विकास कार्यक्रमों की समीक्षा करने वाली, बलवंतराय मेहता समिति ने 1957 में पहली बार महिलाओं को प्रतिनिधित्व देने के लिए दो महिला सदस्यों के चयन की अनुषंसा की।

उपरोक्त सांकेतिकता को ध्यान में रखते हुए महिलाओं की स्थिति पर गठित एक समिति ने अपनी रिपोर्ट में (सी. एस. डब्ल्यू. आईः 1974) स्थानीय स्तर पर महिला पंचायतों की अनुषंसा की जो ग्राम पंचायतों के अभिन्न अंग होते। इस समिति ने यह भी टिप्पणी की कि विकास से सम्बन्धित नीतियों एवं योजनाओं में ग्रामीण महिलाओं के जीवन, योगदान तथा परिप्रेक्ष्य को कभी भी महत्व नहीं दिया गया है। यह आषा की गई कि इससे स्थानीय स्तर का नेतृत्व उभरेगा तथा राजनीतिक प्रक्रिया में उन्हें भागीदारी के अवसर प्राप्त होंगे। इस समिति की अनुषंसाएॅं महिलाओं की आवष्यकताओं की ओर अधिक ध्यान देने की चिंता पर आधारित थीं ताकि पंचायतें ग्रामीण महिलाओं की मौलिक आवष्यकताओं की पूर्ति कर सकें। (मजुमदार, वीःः1974)। इन अनुषंसाओं को क्रियान्वित नहीं किया गया तथा अषोक मेहता समिति की रिपोर्ट जैसी महत्त्वपूर्ण रिपोर्टों ने न तो इन पर विचार विमर्ष किया और न इन्हें लागू करने की जिम्मेदारी ली (भारत सरकार: 1978)।

संवैधानिक संषोधनों के द्वारा लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के परिदृष्य की तुलना संषोधन-पूर्व काल में प्रचलित परिदृष्य से की जानी चाहिए पूर्ववर्त्ती कालों में, राज्य पंचायत कानूनों के अनुसार, दो तीन-महिला सदस्य (अधिकांषः मनोनीत और कुछ मामलों में निर्वाचित) स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व प्रदान करती थीं। लेकिन उक्त संषोधनों से आरक्षण की व्यवस्था होने के साथ ही लगभग 10,00,000 महिलाएं स्थानीय निकायों में विभिन्न श्रेणियों में या तो सदस्यों के रूप में अथवा सभापति के रूप में निर्णय लेने वाले पदों तक पहुॅंच गई है। बुनियादी स्तर पर इन संषोधनों के कार्यान्वयन के संदर्भ में, सभी राज्यों ने नए पंचायत अधिनियम अधिनियमित किए हैं, यद्यपि बिहार वस्तुतः ऐसा करने में पीछे रहा है।

पंचायती राज संस्थानों के माध्यम से महिलाओं ने अपनी प्रतिभा, समर्पण व कार्यकुषलता से सभी को परिचित करा दिया है। संविधान में संषोधन से पूर्व परामर्षात्मक चरण में, स्थानीय निकायों के चुनाव हेतु अनुभवी और सक्षम महिलाओं की पर्याप्त उपलब्धता पर शंकाएं व्यक्त की गई थीं। पिछले दो दषकों के अनुभव ने इन शंकाओं का खंडन कर दिया है। महिलाएं वस्तुतः बड़ी संख्या में उपलब्ध रहीं हैं, आरक्षण के रास्ते पंचायतों और नगर पालिकाओं में उन्होंने पद प्राप्त किये हैं और इन पदों के साथ अपेक्षित उत्तरदायित्वों को संभालने और पूरा करने में वे व्यावहारिक अनुभव प्राप्त कर रही हैं। उनमें से कुछ ने सेवा का सराहनीय निष्पादन प्रदर्षित किया है और अपने प्रदर्षन के लिए सम्मानित पुरस्कारों की प्राप्तकर्ता बनी हैं। साक्षरता के अभाव से होने वाली असमर्थता के प्रति जागरूक बनते हुए उनमें से कई ने साक्षरता प्राप्त करने की ऊँचीं प्राथमिकता दी है। इन महिलाओं द्वारा शांति, सुषासन के साथ-साथ महिलाओं के साथ हो रही घरेलू हिंसा, दहेज प्रथा, शराबखोरी इत्यादि अनेक सामाजिक समस्याओं के राजनीतिक हल ढूंढे गये हैं और सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक भेदभाव के खिलाफ आवाज उठाई है। इनके लिए राजनीति मात्र सुख भोगने का जरिया नहीं बल्कि समाज में गैर-बराबरी को खत्म करने एवं न्याय और समता को स्थापित करने का माध्यम है। स्थानीय निकायों की महिला सदस्यों के कार्य-निष्पादन के अध्ययन दर्षाते हैं कि वे विकासात्मक कार्यो के कार्यान्वयन में पेय जल, स्वास्थ्य, सफाई की व्यवस्था, माता और षिषु परिचर्चा केन्द्रों की स्थापना, सड़क निर्माण इत्यादि को प्राथमिकता दे रही हैं। मधव्यसनता के विरूद्ध अभियानों और आन्दोलनों में भी वे सक्रिय रही हैं। पष्चिम बंगाल की कुल्टीकिरी और महाराष्ट्र की वितनेर (काफी पुरानी संस्था) की केवल महिला सदस्यों वाली पंचायतों को संस्थागत उत्कृष्टता हेतु पुरस्कार दिये गए हैं।6 पंचायतों से जुड़ाव बढ़ाने और स्वंय सहायता समूहों के सदस्यों को आवष्यक बैठकों में भाग लेने का अवसर देने की जरूरत है। इससे महिलाए विकास कार्यो के बारे में निर्णय लेने की प्रक्रिया का हिस्सा बन सकेंगी, जिससे न केवल बहुमूल्य और सार्थक सुझाव प्राप्त होंगे।

4.2 पंचायतराज व्यवस्था में समस्या संबंधी अध्ययन -

भारत सरकार से प्रकाषित योजना एवं कुरूक्षेत्र जैसी पत्रिकाओं से विभिन्न प्रान्तों से प्राप्त सूचनाओं के विष्लेषण से स्पष्ट होता है कि जहां कहीं भी महिला सदस्य अथवा प्रधान या सरपंच समाज के प्रभावी वर्ग के विरूद्ध फैसला करते हैं, तो उन्हें अनेक समस्याओं यहां तक कि अपने शीलभंग का भी सामना करना पड़ता है। यही नहीं अपने विरूद्ध हिंसा और सामाजिक विरोध भी सहना पड़ता है। उत्तर प्रदेष व अन्य राज्यों में जहां पुरूषों ने अपने परिवार की महिलाओं को उम्मीदवार के रूप में खड़ा किया ताकि ग्राम पंचायत में वास्तविक प्रधान बने रहे। फैजाबाद मंे एक ग्राम पंचायत में प्रधान का पद अनुसूचित जाति की महिला के लिए आरक्षित कर दिया, एक ब्राह्मण जाति के व्यक्ति ने प्रधान पद को कब्जाये रखने के लिए एक अनुसूचित जाति की महिला से विवाह कर लिया और उसे चुनाव में जितवा दिया। विष्लेषण से स्पष्ट होता है कि उच्च वर्गीय समाज का व्यवहार पंचायत के चयनित प्रतिनिधियों के प्रति विषमतापूर्ण क्यों है? इसका विष्लेषण करने पर कुछ पारम्परिक अविकासगामी और आर्थिक कारण स्पष्ट होते हैं। उदाहरणार्थ, जहां पर्दा प्रथा, पारम्परिक संस्कार, पारम्परिक पुरूष वर्चस्व, समाज के प्रभावषाली वर्ग एवं जातियों का आधिपत्य,

रूढिवादिता जैसे कारणों की श्रेणी में आते हैं वहीं जानकारी का अभाव, षिक्षा का अभाव, जागरूकता का अभाव, प्रषासनिक अधिकारियों का सहयोग न करना, पुरूष वर्ग का असहयोग आदि कुछ ऐसे कारक हैं जो सामाजिक श्रेणी में रखे जा सकते हैं। स्वाभाविक रूप से गरीबी, बेरोजगारी, आर्थिक संसाधनों का न होना आदि कारण आर्थिक श्रेणी के कारण हैं। स्वाभाविक रूप से उपरोक्त कारणों का आधारभूत कारण अषिक्षा, दरिद्रता, बेरोजगारी एवं सामाजिक रूढ़िवादिता और प्रषासन की इस दिषा में अकर्मण्यता है। राजनैतिक माहौल में सहभागी महिला प्रतिनिधियों के प्रति पुरूष समाज को रूढ़िवादी सोच बदलनी पड़ेगी ऐसी महिलाओं में साहस उत्पन्न करना होगा तथा महिलाओं को उनकी आंतरिक क्षमता एवं शक्ति पर भरोसा करना होगा महिलाओं को भी पुरूषों जैसा मान सम्मान और सामाजिक प्रतिष्ठा देनी होगी तभी राजनीति में महिलाओं का सकारात्मक सहयोग प्राप्त हो सकेगा। राजनैतिक माहौल में अपराधीकरण, आंतकवाद, कालाधन, चरित्र लांछन जैसे दुर्गण है, इससे महिलाएं सार्वजनिक रूप से अलग रहती हैं। उन्हें सामाजिक अप्रतिष्ठा का भय बना रहता है। इसलिए राजनेताओं और राजनैतिक दलों को इस दूषित वातावरण में परिवर्तन लाना जरूरी है, ताकि महिलाएं राजनीति में सक्रिय सहयोग दे सकें।

4.3 समालोचनात्मक विष्लेषण -

पंचायती राज व्यवस्था के वर्तमान स्वरूप और कार्यप्रणाली से कुछ अवांछित प्रवृत्ति की सम्भावना भी बनती है जैसे जातिगत समूहों के ध्रुवीकरण की सम्भावना। इससे सामाजिक स्तर पर तनाव की सृष्टि हो सकती है और राजनीतिक स्तर पर अयोग्य और अक्षम लोगों का प्रवेष। इन संस्थाओं पर शासन प्रषासन का नियन्त्रण पूर्ववत ही है। वस्तुतः पिरामिडाकार शासनतन्त्र स्वायत्तता का निषेध है। क्योंकि ऊपर का स्तर निम्नस्तर पर हावी रहता है। फलतः स्वावलम्बन तथा आत्मनिर्भरता प्रभावित होती है। इसमें शक्ति का स्रोत शीर्ष होता है, जबकि जनतन्त्र में शक्ति का स्रोत जनता होनी चाहिए। वही सामूहिक रूप से शक्ति का उपभोग भी करे। इसके लिए गाँधीजी के ग्रामीण-गणतन्त्रों के संरचनात्मक ढाँचे से सीख ली जा सकती है। गाँधीजी ग्राम-गणतन्त्रों को सागरीय वृत्ताकार ढाँचे के रूप में स्थापित करना चाहते थे। इसमें गाँधीजी के अनुसार, ''सबसे पहला और सबसे आखिरी दोनों बराबर होंगे या यों कहिए कि न कोई पहला होगा और न कोई आखिरी।'' संविधान संषोधन अधिनियम में पंचायतों के अधिकार तथा शक्तियों के निर्धारण का दायित्व राज्य-विधान मण्डल की इच्छा पर छोड़ दिया गया है। यद्यपि सभी राज्यों ने अपने-अपने पंचायती अधिनियम में पंचायतों को काफी शक्तियां प्रदान की हैं। पर अभी भी वे एक स्वायत्तषासी संस्था के रूप में विकसित नहीं हो पा रहे हैं। बदलते हुए संदर्भ में उन्हें एक कृषि औद्योगिक समुदाय के रूप में विकसित करने आवष्यकता है। सहकारी समितियां इस संदर्भ में क्रान्तिकारी भूमिका निभा सकती हैं। स्थानीय स्तर पर किसान, कारीगर, दस्तकार, षिक्षक, पत्रकार, समाजसेवी और स्वैच्छिक कार्यकर्ता मिलकर विविध सामुदायिक गतिविधियों को सम्पादित कर गाँवों के स्वावलम्बन तथा स्वषासन को स्थापित करने के साथ उनके विकास की नई परिभाषा रच सकते हैं। इससे सामाजिक गतिषीलता भी बढेगी। परस्पर हितों की सम्बद्धता सामाजिक गतिषीलता की सृष्टि करती है। पारस्परिक हित का दायरा जितना अधिक व्यापक होता जाएगा सामाजिक गतिषीलता की तीव्रता भी उतना ही बढ़ जाएगी। ऐसा करके ही हम भूस्वामियों तथा उच्चवर्ग के वर्चस्व को तोड़ने में समर्थ हो पाएॅंगे। ये लोग पंचायती राज व्यवस्था की सफलता के मार्ग में सबसे बढ़े अवरोधक हैं।

महिलाओं के संदर्भ में कहा जा सकता है कि अभी भी महिलाओं का बड़ा समूह राजनैतिक क्षेत्र में स्वयं को पृथक रखे हुए है। गिनी-चुनी महिलाएं ही राजनैतिक निर्णय प्रक्रिया में भाग लेने हेतु आगे आ पाई है। राजनैतिक सहभागिता के लिए प्रदत्त आरक्षण का अधिकार परिवार के पुरूष सदस्य द्वारा सत्ता प्राप्त करने का एक साधन ही सिद्ध हुआ है। वास्तविक अर्थों में ऐतिहासिक रूप से महिलाओं के निम्न सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक स्थिति के कारण वे अपने इस अधिकार का उपयोग कर पाने में असमर्थ सिद्ध हुई हैं।

सामाजिक जीवन में व्यवहार प्रतिमान के परंपरागत आधारों का महत्व ग्रामीण समाजों की महिलाओं की नवीन भूमिका के प्रति उपेक्षित भाव को प्रदर्षित करता है। स्वयं महिलाओं में भागीदारी के निम्न स्तर के लिए उत्तरदायी व्यक्तिगत कारकों यथा अषिक्षा तथा इसके कारण जागरूकता का अभाव वास्तव में महिलाओं के प्रति समाज के निम्न दृष्टिकोण की उपज है। भागीदारी के इस निम्न स्तर का प्रभाव ज्ञान, सषक्तिकरण व उनके अभिमत पर भी पड़ा है जो कि इस तथ्य को इंगित करता है कि आरक्षण द्वारा महिलाओं को सषक्त बनाने का संवैधानिक प्रयास वास्तव में सफल नहीं हो पाया है। पंचायतों में महिलाओं के अधिकारों, शक्तियों व उत्तरदायित्वों के बारे में, पंचायत की कार्यवाही करने के लिए विभिन्न नियमों व कानूनों के बारे में, वित्तीय व गैरवित्तीय संसाधन इकटठा करने के बारे में तथा विकेंद्रीयकरण योजना तैयार करने के बारे में केन्द्र सरकार, राज्य सरकार एवं विभिन्न स्वैच्छिक संस्थायें महिलाओं को प्रषिक्षण दे रही है जिसके परिणामस्वरू महिलाओं की सोच व समझ का विस्तार हुआ है और वे पंचायतों में अपनी भूमिका प्रभावी ढंग से निभा रही हैं। देष के विभिन्न राज्यों में महिलाओं की मुखरता के अनेक उदाहरण सामने आये हैं जो यह सिद्ध करते हैं कि महिलाएं भले ही अषिक्षित हैं व अनेक समस्याओं से ग्रस्त हैं, फिर भी उन्होंने ग्रामीण समाज में नए उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। भविष्य में जैसे-जैसे महिलाएं प्रषिक्षण प्राप्त करने से व पंचायतों की बैठकों में भाग लेने के माध्यम से इकटठा हांेगी, कम मुखर महिला प्रतिनिधियों पर मुखर महिलाओं का प्रदर्षनकारी प्रभाव पड़ेगा जो उनकी पंचायतों की भूमिका को सकारात्मक रूप से प्रभावित करेगा।

5. निष्कर्ष :

ग्रामीण स्तर पर सम्बन्धित सूचनाओं के आधार पर जो निष्कर्ष पाये गये हैं, उनमें महिला प्रतिनिधियों में षिक्षा की कमी, महिलाओं में अजागरूकता, पुरूष वर्ग का वर्चस्व, नौकरषाही की उदासीनता, समाज के प्रभावषील वर्गो द्वारा स्थानीय स्तर की संस्थाओं पर प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रभुत्व की स्थापना, समाज में व्याप्त परम्परावादिता, वर्गीय एवं जातीय तनाव तथा महिलाओं की प्रषासनिक क्षमता में समाज का अविष्वास आदि ऐसे सामाजिक मुद्दे हैं जो पंचायती व्यवस्था को प्रभावषाली बनाने में एवं महिलाओं के द्वारा उक्त व्यवस्था में सक्रिय भागीदारी के क्रम में बाधाकारी प्रतीत होते हैं। शासन के स्तर पर वित्तीय संसाधनों का अभाव अथवा वित्तीय संसाधनों का उचित उपयोग न किया जाना, प्रषासन के प्रति सहयोग न होना एवं पारस्परिक समन्वय का अभाव कुछ ऐसी समस्याएं हैं जिन्हें प्रषासनिक स्तर पर सुधारे जाने की आवष्यकता है। दलगत राजनीति के कारण भी स्थानीय स्तर पर विकास कार्यो की उपेक्षा हुई है। महिलाओं को निचले स्तर पर राजनीतिक प्रक्रिया में सक्रिय सहभागिता हेतु प्रोत्साहन, परम्परागत सामाजिक ढाँचे, राजनीतिक चरित्र तथा सामाजिक न्याय की प्राप्ति की दिषा में दूरगामी प्रभाव डाने वाला है। सन् 1952 से लेकर आज तक संसद में महिलाओं का प्रतिनिधित्व लगभग आठ प्रतिषत रहा है। राज्य विधान सभाओं में भी इससे अधिक उनका प्रतिनिधित्व नहीं रहा। एक-तिहाई स्थानों तथा पदों का आरक्षण प्रत्येक पंचायत स्तर पर होने से स्त्री-पुरूष समानता के लक्ष्य प्राप्त होने में सहायक होगा। यद्यपि आदर्ष स्थिति तो तब होगी जब महिलाओं की भागीदारी पचास प्रतिषत सुनिष्चित की जा सके। बंगाल के पंचायत चुनाव में महिलाएं काफी संख्या में आरक्षित स्थानों के अतिरिक्त चुनकर आईं। इससे कुल लगभग 38 प्रतिषत महिलाएॅं पंचायती राज संस्थाओं में प्रतिनिधित्व करने लगी हैं। इससे आषा जगी है कि आगे चलकर केन्द्र तथा राज्य के विभाग मण्डल में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बढ़ेगा। भारतीय सामाजिक संरचना में भारतीय महिलाओं की जो प्रास्थिति ;ैजंजनेद्ध है इससे कई अन्तर्विरोध नई प्रक्रिया से उभरे हैं। पुरूषों का वर्चस्व अब भी बना हुआ है। देखा जा रहा हे कि चुनी हुई महिलाएं अपने घर के पुरूषों के निर्देषन में कार्य करती हैं। यहां तक कि पुरूष बैठकों में भी उपस्थित रहकर निर्णय को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। महिलाओं की सोच अभी उतनी आत्मनिर्भर नहीं हो पाई हैं, जितनी व्यवस्था को अपेक्षा है।

महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता के आधार को व्यापक बनाने तथा उसमें गुणात्मक परिवर्तन लाने के लिए तीन बातों की अपेक्षा है। प्रथम महिलाओं में वर्गीय चेतना का विकास, द्वितीय आर्थिक निर्भरता के अवसर और तीसरे षिक्षित बनाना। पुरूषों का मुखापेक्षी बनकर महिलाएं अपना भला नहीं कर सकतीं। महिला संगठनों को इस दिषा में आगे आना चाहिए। राजनीतिक दलों को भी इस बात को गम्भीरता से लेना चाहिए। उन्हें अपने दलीय संगठनों के प्रत्येक स्तर पर महिलाओं को समुचित प्रतिनिधित्व देना चाहिए।

6. सुझाव :

पंचायती राज व्यवस्था के समस्त परिदृष्य का अनुकूलन करने के उपरांत यह स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक संरचना, परम्पराओं एवं संस्कृति के कारण सम्भवतः महिला पंचायत प्रतिनिधि उत्साहित व इच्छासक्त होने के बावजूद ग्रामीण विकास की दिषा में प्रभावी योगदान नहीं कर पा रही है। स्थानीय राजनीतिक नेतृत्व एवं नौकरषाही भी यद्यपि इस तथ्य को पहचानती है तथापि वह कोई सक्रिय रचनात्मक पग उठाने के प्रति विभिन्न कारणों से या तो उत्साहित नहीं है अथवा हिचकती है अतः आवष्यकता यह है कि लोकनीति निर्माणकर्ता जो व्यवस्था की कुर्सी पर विराजमान है वे यथार्थ को समझे और षिक्षण प्रषिक्षण एवं जनजागरण के माध्यम से स्थानीय प्रषासन में महिलाओं को इतना सषक्त समर्थन प्रदान करें ताकि वे अपनी क्षमताओं का सही- सही उपयोग एवं प्रदर्षन कर सकें।

पंचायत राज व्यवस्था का पावन उद्देष्य निष्चय ही भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था को सुदृढ़ करना और निम्न स्तर पर राजनीतिक सहभागिता को स्थापित करना है परंतु व्यवहारिक पक्ष यह संकेत देता है कि व्यवस्था में कुछ आधारभूत सुधारों एवं उचित षिक्षण-प्रषिक्षण और व्यापक स्तर पर जनप्रचार आदि के माध्यम से इस व्यवस्था को पूर्ण रूप से सफल बनाने हेतु प्रत्येक स्तर पर मतदाताओं एवं महिला प्रतिनिधियों सभी की पूर्ण सहभागिता के साथ अधिक परिश्रम की आवष्यकता है ताकि भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था की जड़ों को पूर्ण रूप से प्रेषित सुदृढ़ किया जा सके। अतः आवष्यकता इस बात की है कि राजनीतिक, अकादमिक और नौकरषाही अभिजन इस तथ्य को स्वीकार करने का प्रयास करें और प्रजातन्त्रीय शासन व्यवस्था में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था को मजबूती प्रदान करने के लिए निचले स्तर की इन संस्थाओं को यथोचित रूप से शक्तिषाली बनाने में सहयोग प्रदान करें।

संदर्भ ग्रंथसूची :

1. महिलायें तथा शासन, राज्य की पुनर्कल्पना, एक रपट , एकत्र, सोसायटी फॉर डेवलपमेंट आल्टरनेट्विस फॉर विमेन, नई दिल्ली, पृ. 32-33.
2. डॉ. सरला गोपालन, ''समानता की ओर अपूर्ण कार्य - भारत में महिलाओं की स्थिति 2001'', राष्ट्रीय महिला आयोग, दिल्ली, 2002, पृ. 291-292.
3. रोली षिवहरे, पंचायतों में महिलाओं की सकारात्मक हिस्सेदारी , कुरूक्षेत्र, अगस्त 2009, पृ. 22.
4. डॉ. सरला गोपालन, पूर्वांक, पृ. 292.
5. सुभाष सेतिया, ग्रामीण महिलाओं का गौरव स्वंय सहायता समूह , कुरूक्षेत्र, जनवरी 2009, पृ. 21.

6. विजय रंजन दत्त, पंचायती राज: संकल्पना और वर्तमान स्वरूप, सर्वसेवा संघ प्रकाषन, राजघाट, वाराणसी, 1997, पृ. 46.
7. धीरज चौधरी, कुरूक्षेत्र, सितम्बर 1998, वर्ष-43, अंक-11, पृ. 40-41.
8. मंजू पंवार, कुरूक्षेत्र, अप्रैल 1999, वर्ष-44, अंक-6, पृ.39.
9. राकेश शर्मा 'निषीप', कुरूक्षेत्र, अगस्त 2006, वर्ष-52, अंक-10, पृ. 19.
10. महिपाल, कुरूक्षेत्र, सितम्बर 1998, वर्ष-43, अंक-11, पृ. 12.
11. नीलीमा कंवर, सीमा कन्नौजिया, कुरूक्षेत्र, सितम्बर 1998, वर्ष-43, अंक-11, पृ. 13.
12. मीनाक्षी पंवार, पंचासती राज और ग्रामीण विकास, क्लासिकल पब्लिषिंग कम्पनी, नई दिल्ली, पृ. 237.
13. दिलीप कुमार, योजना, जून 1994, वर्ष-38, अंक-9, पृ. 20.
14. यतीन्द्र सिंघ सिसौदिया, कुरूक्षेत्र, सितम्बर 2004, वर्ष-49, अंक-11, पृ. 19-20.
15. बी.एल. फड़िया, लोक प्रषासन, 1998, साहित्य भवन पब्लिकेषन, आगरा, पृ. 85-86.
16. एस.सी. कुरूक्षेत्र, पृ. 15-16.
17. कष्ण चन्द्र भालू, कुरूक्षेत्र, जून 1999, पृ. 37-38.
18. निर्मल कुमार आनन्द, कुरूक्षेत्र, मई 2007, वर्ष-53, अंक-7, पृ. 47.
19. आलोक पांडेय, कुरूक्षेत्र, अगस्त 2000, वर्ष-45, अंक-10, पृ. 33-34.
20. मनीष कुमार, कुरूक्षेत्र, अगस्त 2007, वर्ष-53, अंक-10, पृ. 29.
21. मंजू पंवार, कुरूक्षेत्र, अप्रैल 1999, वर्ष-44, अंक-6, पृ.39.
22. महिपाल, कुरूक्षेत्र, सितम्बर 1998, वर्ष-45, अंक-10, पृ. 7-8.